लेखक के पूज्य पिता

श्री स्व० दीवान दयाकृष्णजी, गिरी हाउस, अलवर।

जन्म सं० १९०१ — मृत्यु सं० १९६१

समर्पण

स्मृतियां अब तक सुखमय थी जो, वे ही अब दुखमय हैं हाय !
याद उन्हें कर अश्रु बहावें, रहा शेष क्या अन्य उपाय ॥

श्रद्धेय पूज्य पिता !

भगवान आपकी आत्मा को शान्ति और उत्तमगति प्रदान करें। मुझे खेद है कि मेरे तुच्छ शरीर से आपकी कुछ भी सेवा न बनी, युवावस्था का विकास हुआ ही था कि आप इस असार संसारमें न रहे। आप का सरल स्वभाव, साधुओं का सा निष्कलंक जीवन और इस अभागे के प्रति वात्सल्य प्रेम कैसे भूल सकता हूँ। अतः आपकी पुण्य स्मृति में इस पुस्तक को भेट करता हूं। आपकी उच्च आत्मा के अतिरिक्त मेरी अन्तरात्मा ने अन्य पात्र न बताया क्योंकि आपका आहार यावज्जीवन निरामिष रहा और स्व० महाराज सवाई शिवदानसिंहजी व श्री मङ्गलेश के शासनकाल में, जिन महान् आत्माओं ने आपको दादा भाई और काकाजी के अतिरिक्त किसी अन्य शब्द से कभी सम्बोधित ही नहीं किया रसोवडा-गङ्गाजली विभाग के सर्वेसर्वा रहते हुए आप नितान्त इन अपवित्र वस्तुओं से जल में कमल के सदृप रहे, जिसका हम आपकी अकर्मण्य सन्तान को गर्व है। आपके आशीर्वाद का सदैव भिखारी।

आपका वत्स—

'मौलि'

प्रस्तावना

भारत में मांसाहारी दो प्रमुख जातियाँ हैं, हिन्दू और मुसलमान जो अपने-अपने धार्मिक विचारों पर दृढ़ हैं। हिन्दुओं में गऊ, मयूर, कबूतर आदि का मांस निषेध माना है और मुसलमानों ने सूअर को, जिसे बद जानवर भी कहते हैं। धार्मिक दृष्टि से श्राद्ध के दोनों ही अनुयायी हैं। हिन्दुओं ने एक पखवारे तक तिथियों के क्रम से पितृ पक्ष नियमित कर रखा है जिसमें पित्रों का आवाहन करते हैं और मुसलमान शब्बरात के दिन एक ही दिवस में सारे पुर्खाओं से निपटारा कर लेते हैं। दोनों पक्ष जीवन भर मांसाहारी रहते हुए मृतात्माओं की तृप्ति मिष्ठान के भोग से करते हैं। ऐसी दशा में उन्हें सन्तोष तो नहीं होना चाहिये। वह प्राणी जब जीवन काल में शाकाहारी नहीं रहा तो मनुष्य से ऊँची श्रेणी में पहुँचने पर जीवन भर के रोचक खाद्य पदार्थों से असन्तोष हुए बिना कैसे रहेगा। इससे यह स्वतः ही सिद्ध है कि मांस अमानुषिक भोजन है जो उत्तम श्रेणियों में प्रिय नहीं कहा जायगा और जब पितृ योनि में इससे घृणा प्रतीत हो चुकी तो देव योनि में नितान्त घृणास्पद ही माना जाना चाहिये।

पाश्चात् देशों के प्रति जहाँ धर्म की व्याख्या भिन्न है तथा श्राद्ध मतावलम्बी नहीं है और पक्षियों में केवल कनकऊ* और चौपायों में एक चारपाई को, राम जाने, कैसे बहिष्कार किया है और भक्षा-भक्ष कोई नियमित प्रमाण

---

* पतंग (Flying Kite)।
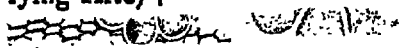
पर नहीं रखे तो उनके लिए श्राद्ध तर्पण आदि भौंचाल, बाढ़, शीत, संभ्रम के द्वार खुले हैं। भारत के प्रति जहाँ के निवासी चाहे हिन्दू हैं चाहे मुसलमान--परन्तु हैं धर्मावलम्बी, मार्ग पृथक सही, परन्तु लक्ष एक है, फिर धर्म कर्म पर निर्भर है :—

"कर्म प्रधान विश्व कर राखा, जो जस करे सो तस फल चाखा।"

भगवान् तथा अल्लाह ताअला जो भी जिसका इष्ट है, उत्तम है। वह शक्ति जो कोई भी है दयालु कही जायगी वरन् न्यायकारी होने में तो किसी को सन्देह ही क्या हो सकता है। कर्मानुसार चाहे किसी को छत्रपति और किसी को भिखारी क्यों न बना दिया हो, किन्तु जन्म मरण का सूत्र दोनों का एक है। यहाँ भी कर्म को प्रधानता अवश्य है, और सब कुछ कर्मों की पूर्व संचय के अनुसार स्वीकार करना पड़ेगा। अन्त में सारांश यही आकर निकलता है कि किसी प्राणी को न सताना मानव जाति का श्रेष्ठ कृत्य है फिर शास्त्रकारों ने भी यही बताया है कि—"नैशे बलस्येति चरे दधर्म्मम्" अर्थात् "तू बलवान है इस गर्व में अधर्म नहीं करना चाहिये।"

(२) पूर्वजों के पद पथ पर लेखक का भी क्षत्रिय जाति से जो मांस भक्षण में प्रमुख हैं विशेष सम्पर्क रहा है और नवरात्रि में "बलिदान" (झटके) देखने का दुर्भाग्य इसी कारण कई बार प्राप्त हुआ। रूढ़ि के पालन में वीर क्षत्रियों ने इसे एक धर्म का अंग समझ लिया है। धर्म चाहे विनोद कुछ भी सही पशु का सर तन से अलग होने पर प्राण पखेरू उड़ने तक उस के तड़पने का कष्ट भीवत्स, कारुणिक और रोमांन्चकारी जरूर कहना पड़ेगा जिसको अन्तरात्मा सहन नहीं कर सकती। टोंक राज्य में ऊंट का बकरा ईद

पर ऐसा ही क्रूर बलिदान होता है जिसका अकथनीय निर्दयता से मारते हैं कि वह पशु चारों ओर भागता फिरता है और प्राण रक्षा की मृग तृष्णा में जिधर भी पहुँच गया उधर ही जन-समूह तलवार, भाले, बरछी आदि यन्त्रों से उसके जख्म करके मजाक उड़ाते हैं। ऐसे ही बहुत जगह भैंसों को दौड़ा कर विजयादशमी पर मारने का रिवाज है। साधारण हृदय रखने वाला भी इस कार्य को अमानुषिक ही नहीं, अपितु पैशाचिक कहे बिना नहीं रह सकता कि "किसी की जान गई आपकी अदा ठहरी"। ऐसे देव पूजन न्याय सङ्गत हैं तथा निन्दनीय, पाठक स्वयम् विचार कर लें। परिणाम वही होता है जो होना चाहिये कि "बगर बैजाअ कि सुल्तां सितम रवादरद, जनन्द लशकरयांनाश हजार मुर्ग बसीख" अर्थात् यदि बादशाह वक्त एक अंडा भी जुल्म से प्राप्त करे तो उसके लशकरी हजारों जानवरों का कबाब कर सीखों पर चढ़ा देंगे। हम इन्दौर महाराज को बधाई दिए बिना नहीं रहेंगे कि उन्होंने नवरात्र में प्राचीन बलिदान का बलिदान कर दिया। उन दिनों में आप मिष्टान वित्तीर्ण करते हैं जो चरित्र उल्लेखनीय, आदरणीय और प्रशंसनीय है।

(३) हिन्दुस्तान की हिन्दू प्रजा ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर पशुओं का लेजा, उनके दुग्ध से लाभ उठाने का धन्धा अपने जीवन का व्यवसाय बनाया और ज्यों ही वह दुग्ध देने में असमर्थ हुआ वहीं (Slaughter House) में दे दिया और जो दाम मिले अण्टी में लगाये !!!

तपस्वी ब्राह्मण जिनकी देश भर में धाक थी और पराक्रमी क्षत्रिय जाति जिनके आदेश को "ब्रह्म वाक्य जनार्दनः" मान उनसे कांपती थी, नहीं उनकी अंगुली पर नाचती थी दोनों ही कर्म च्युत होने से अपना प्रभाव खो

बैठे। गुरु वशिष्ट स्वयम् पुं प्रां: कर्म को निन्दनीय कह चुके हैं उस समय इतना होगा या नहीं वर्तं मां तो उन महर्षियों की सन्तान पतित होकर अधोगति को पहुँच चुकी।

जब ब्राह्मण प्रणाली आदर्श ज्ञान के भण्डार की अपेक्षा खैरात के टुकड़ों से तथा इन्द्रिय लोलुप स्वार्थ परायण, खुशामद्दी और चरित्रहीन बन जावें तो श्रेष्ठ मानवता नौ दो ग्यारह होनी ही चाहिये। जब पथ प्रदर्शक इस पराकाष्ठा पर पहुँच जावे तो अब क्षत्रिय जाति को घोर निद्रा से कौन जगावे। राजा दलीप जैसे प्रातः स्मरणीय क्षत्रिय अब कहाँ जिन्होंने गऊ के प्रति प्रथम आदरणीय सेवा का उदाहरण संसार के समक्ष रखा फिर अपना प्रिय शरीर काट बाघ को तृप्त किया परन्तु गऊ के प्राण बचा अपना चिर स्मरणीय यश छोड़ा। इसके विपरीत आज प्रति दिन सहस्रों गऊ कटती हैं और भारत स्तम्भ योद्धाओं की सन्तान के सर में जूं भी नहीं रेंगती, नहीं, मजा यह कि वह विशाल होटलोंमें भोजन कर गौर्वान्वित होती है जहाँ Beef और Ox-tongue जैसे नीच पदार्थ बनाये जाते हैं। रक्षक-भक्षक बन गये अब घोर अन्धकार छा गया हिन्दू जाति किसका आश्रय ले समझ में नहीं आता। भारत अधोगति को पहुँच चुका, दुष्काल अनावृष्टि से अन्न और धन का अभाव हो चला, अनन्य रोग और संग्राम आदि कष्टों पर कष्ट लगातार सर पर खड़े हैं। दशा यहाँ तक पहुँची कि महात्मा द्रोण की सन्तान दुग्ध को तरसती है, पुण्य भूमि भारत में जहाँ कभी दुग्ध और घृत की नदियाँ बहती बताई जाती हैं निकट भविष्य में इन अमृतरूपी पदार्थों का नामोनिशान मिट कर चरक और सुश्रुत के आचार्य यह वस्तुएं नुस्खों में लिखा करेंगे।

(४) खेद है यह पुस्तक विलम्ब से प्रकाशित हो रही है। संसार में यह भाव लुप्त तो न थे और न यही कहा जायगा कि लेखक के निवेदन पर ही इस सम्बन्ध में जाग्रति निर्भर है क्योंकि सहृदय वैश्य समुदाय कुछ न कुछ सदैव करता रहा है। किन्तु दानवीर बिरला आदर्श से हमारा अनुरोध है जिनको ईश्वर ने धन के साथ दिल और दिमाग भी दिया है कि वह इस सुकार्य का पूर्ण नेतृत्व अपने हाथ में लेकर संचालन करें वरन् हर की पैड़ियों पर घन्टा-घर तथा दिल्ली का विशाल मन्दिर इस महान् कार्य के मुकाबले में कोई अस्तित्व नहीं रखते हैं, स्मरण रखें, क्योंकि:—"खुदा का घर बनाना है तो नक़शा ले किसी दिल का"। अन्यथा,"मस्जिदो देर बनाया करो क्या होता है।" लेखक ने अपने भाव रख दिये हैं जिनको अपनाना तथा ठोकर मारना पाठकों की सहृदयता के आधीन है। पुस्तक के प्रकाशन में विलम्ब धन का अभाव, एक वैश्य मित्र की ओर से प्रथम उत्तेजना पश्चात् उदासीनता तत्पश्चात् ३५ वर्षीय ज्येष्ठ पुत्री का सहसा वियोग जिससे जीवन नौका डगमगा गई और पूर्ववत् उत्साह जो श्री गंगावतरण, रहीम सतसई तथा मेरे जीवन की भूल "नामक" प्रस्तुत लिपि के प्रकाशन में था विलीन सा हो गया। अब नहीं कहा जा सकता कि मृत्यु से आलिंगन के पूर्व ऐसी योजना सफल भी हो सकेगी कि नहीं, बक़ौल किसी कवि के कि :—

"हजारों हसरतें ऐसी हैं जो निकाले से नहीं निकलें।
बहुत अरमान ऐसे हैं जो दिल के दिल में रहते हैं॥"

निर्धनों के साधारण मनोरथ भी पूर्ण नहीं होवे, धनवानों को द्रव्य द्वारा कौनसी सांसारिक वस्तुएँ हैं जो अप्राप्य कही जायें। किन्तु :—

"कनक कनक सौ सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, यह पाये बौराय॥"

फिर धन और चरित्र में परस्पर मैत्री होती तो हम भी धनी होने का प्रयत्न करते और संसार में सभी सुख भोग वृद्धावस्था कुशल से व्यतीत कर लेते। वर्तमान में यही कहना पड़ता है कि :—

"यामुझे अफ़सरे शाहाना बनाया होता। यामुझेताज गदायान पिन्हाया होता।"
"वरना, ऐसा जो बनाया न बनाया होता।"

सन्तोष के लिए उपेक्षा वृत्ति में इतना कह कर समाप्त करता हूँ कि—

"रहें वोह जिनके दम से रौनक़ें हैं बज्मे आलम की।
अगर हम हैं तो क्या है और न हम होंगे तो क्या होगा॥

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

लड्डीवालों की गली, जयपुर
आश्विन कृ. ७ भौमवार
संवत् १९९९ वि.

विनीत—
दीवान मौलिचन्द्र।

पशु-वध

हिन्दू जाति में "धर्म" पुस्तकों के मुख्य तीन विभाग हैं, प्रथम में वेद "उपनिषद्" और "सूत्र" ग्रन्थ हैं, दूसरे में "स्मृतियां" और तीसरे में "पुराण"। यद्यपि इन सभी को "धर्म" पुस्तक माना जाता है परन्तु इन सब में अनन्त मतभेद हैं और इसी का यह फल है कि हिन्दू जातियां धार्मिक दृष्टि से इतने भागों में बिखर गई हैं कि जितने भागों में पृथ्वी की कोई जाति नहीं है। प्रत्येक के पृथक-पृथक विश्वास हो रहे हैं। अकेले "वेद" और उसके साहित्य को धर्म ग्रन्थ मानने वालों के सम्प्रदायों की ही गिनती करना कठिन है, फिर स्मृतियों का हाल, वर्णन सब एक दूसरे के प्रतिकूल हैं और पुराणों का तो हाल यह है कि उनसे "वेद" और प्राचीन साहित्य से प्रत्यक्ष में कोई लगातार सम्बन्ध ही नजर नहीं आता। इनमें जिसने जिस सम्प्रदाय को माना वही उसका विश्वासी हो गया। इन भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय, विश्वास और भावना के अधिकारियों के आचार विचार भी भिन्न-भिन्न हैं। कुछ लोग "वेद" को अपौरुषेय और यज्ञपरक मानते हैं, उनके मत में "वेद" ज्ञान का भण्डार और ईश्वर कृत है, कुछ लोग "वेद" को अपौरुषेय किन्तु यज्ञ परक मानते हैं, उनका मत है कि "वेद" ईश्वर कृत है और उसमें ज्ञान नहीं—यज्ञ के उपयोगी मन्त्र मात्र हैं, उन मंत्रों में अर्थों से कुछ मतलब नहीं—केवल मंत्रों में कुछ शक्तिशाली प्रभाव है जो फल देता है। कुछ लोग "वेद" को ऋषियों द्वारा प्रणीत और ऐतिहासिक

वस्तु मानते हैं। अन्ततः वेदों को यज्ञ परक मानने वाले हिन्दू जाति में अधिक हुये हैं। एक समय ऐसा आया कि "यज्ञ" ही हिन्दुओं का एकमात्र सर्वोपरि धर्म हो गया और वह बहुत समय तक चला। यज्ञों में क्या-क्या पाप पुण्य नहीं हुये। यज्ञों के लिये घोड़े छोड़े जाते, युद्ध होते, राजाओं को व्यर्थ आधीन किया जाना, यज्ञ के लिये दिग्विजय की जाती, रक्त की नदियाँ बह निकलती, यज्ञों में राजा करोड़ों की सम्पति ब्राह्मणों को देकर भिखारी बन जाते, पीछे यज्ञों में पशु वध होते और भी भयानक स्थिति तो तब हुई जब यज्ञ विधान तान्त्रिकों के हाथ में आ गये और मारण, मोहन, वशीकरण आदि तथा भैरव, भैरवी, चण्डी, काली कराली की सिद्धियाँ भी यज्ञों द्वारा ही सिद्ध हो जाने लगीं।

"स्मृतियाँ" मूल ग्रंथों के आधार पर बनी, धर्म सूत्र और गृह सूत्र बनते ही गये और साथ ही यज्ञों के प्रपञ्च बढ़ते गये, पीछे तो इन स्मृतियों ने अनगिनत जातियाँ, अनगिनत लोकाचार मनुष्य समाज में उत्पन्न कर दिये। पुराणों ने अन्तिम प्रभाव पैदा किया और भिन्न-भिन्न प्रकार के महातम, श्रद्धा पैदा करने वाली कहानियाँ, नये से नये ढकोसले और बे सिर पैर की बातें धर्म-सम्पुट की भाँति उनमें भरदीं, जिसके परिणाम स्वरूप लोग अन्ध विश्वास और अज्ञान के पूर्ण वशीभूत हो गये। अतः यज्ञ ही "बलिदान" की प्रथा का आरम्भ और प्रचलित होने का मूल कारण कहा जाता है।

अब देखना यह है कि यज्ञ में पशु-वध की परिपाटी कब से चली। इस सम्बन्ध में ठीक-ठीक प्रकाश तो नहीं पड़ता किन्तु ऐसा प्रतीत होता है

कि भारत में जब मध्य एशिया की जातियों का जो समय-समय पर संघर्ष होता रहा तथा भारत की अनार्य जातियों का जो आर्यों से सम्पर्क रहा उनसे ब्राह्मणों के यज्ञ में पशु-वध प्रचलित हुआ क्योंकि सभी जातियाँ "बलिदान" वस्तु जो कुछ भी है मानने लगीं और वह वास्तव में क्या था और अब भ्रष्ट होकर क्या से क्या हो गया। निस्सन्देह "बलिदान" अनादि काल से है और सृष्टि रहेगी जब तक रहेगा भी, परन्तु वह "बलिदान" दूसरा है जो आदरणीय है। "बलिदान" वास्तव में एक उच्च कोटि का त्याग है उसके विपरीत वर्तमान् दशा घृणास्पद और पैशाचिक बन गई। "बलिदान" निष्काम तो नहीं कहा जा सकता कि मुक्ति, बल, वैभव, ऐश्वर्य आदि कुछ न कुछ स्वार्थ मात्रा उसके पीछे अवश्य लगी मिलती है। इसके प्रशंसनीय कुछ एक उदाहरण उद्धृत किये जाते हैं। सतयुग में मोरध्वज, शिवि, दधीचि तथा हरिश्चन्द्र आदि अनेक महान् आत्माओं की कथाएं हैं जिन्होंने अपने त्याग द्वारा "बलिदान" को अन्तिम पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। उसी समय में जैन-धर्म के अनुसार राजा मेघरथ हुए जिन्होंने बाज तृप्ति निमित्त अपनी जंघा का मांस खिलाया और फिर मोक्ष प्राप्त कर सोलहवों अवतार शान्तिरथ नामक हुए, जिनके उज्ज्वल चरित्र संसार के पटल पर चिरस्थायी रहेंगे। त्रेता में चक्रवर्ती महर्षि रावण ने अनेक बार अपने सिर काट-काट कर शम्भु को चढ़ाये, यह भी "बलिदान" है। उसी युग में "बलिदान" कहा जायगा आदर्श राजा दिलीप इक्ष्वाकु कुल के दीपक का, जिन्होंने पुत्र प्राप्त होने की तपस्या के समय गऊ को बाघ से बचाने के लिये भूखे बाघ को तृप्त करना कर्तव्य समझ अपनी जंघा का मांस खिलाया; तथा द्वापर में राजा अम्बरीष आदि कई एक त्याग-मूर्ति उल्लेख-

नीय हैं। "वलिदान" हज़रत इस्माइल खलीलउल्लाह का कहेंगे, जिन्होंने खुदा को प्रसन्न करने के लिये अपने इकलौते पुत्र का "वलिदान" किया। कहते हैं कि इसी स्मरण में बक़राईद का त्यौहार होता है और जिस समय उक्त हज़रत अपने पुत्र को हलाल कर रहे थे तो उस समय वह बालक जीवित दशा में उठ खड़ा हुआ और उसके स्थान से एक दुम्बा निकल पड़ा इसी से दुम्बे की कुर्बानी की जाती है। कथा इस प्रकार है कि हज़रत ने खुदा को प्रसन्न करने के लिये हजारहा कुरबानी कर डाली किन्तु अल्लाहताला प्रसन्न न हुए। एक दिन अत्यन्त निराश हो दुआ माँगी कि इतनी कुरबानी कर चुका किन्तु या खुदा आप प्रसन्न न हुये उत्तर में 'वही' उतरी तथा आकाशवाणी हुई कि तेरी प्रिय से प्रिय वस्तु जो भी संसार में है उसकी कुरबानी कर, यदि कुरबानी द्वारा ही हमको प्रसन्न किया चाहता है। पुत्र से प्रिय वस्तु संसार में अन्य नहीं हो सकती, हज़रत ने उसी की कुरबानी करना ठहरा लिया और परिणाम जो हुआ उसका वृतान्त ऊपर दे चुके हैं। काल के चक्र तथा बुद्धि के अभाव में वह प्रथा भ्रष्ट होकर तरक्की यहाँ तक कर गई कि गऊ वध भी एक धार्मिक कर्तव्य समझा जाने लगा। इस विषय में आगे चल कर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

"वलिदान" "महात्मा ईसा" का है जिन्होंने अपने दुर्बल शरीर पर उस समय के सब कुछ अन्याय सहन किये किन्तु न्याय के पथ से मुँह न मोड़ा, जैसे आपने त्याग को शिखर पर पहुँचा दिया वैसे ही विनम्र की भी आपने हद करदी। आपने अपने आदेश में अपने अनुयायियों को सदैव यही कहा है कि यदि तेरे दाहिने कपाल पर कोई आक्रमण करे तो दूसरा भी उसके आगे कर दे तथा अपने पड़ोसी को भी सदा प्रसन्न रख और उसका

जी मत दुखा। इसका कहाँ तक अनुकरण हुआ यह तो विश्व विदित है और वर्तमान समय स्वयम् द्योतक है। ऐसे ही "बलिदान" प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप और शिवाजी आदि का है, जिनका यद्यपि पञ्च भौतिक शरीर नष्ट हो चुका परन्तु उनकी उज्ज्वलता कीर्ति जीव मात्र के हृदय में हिलोरें पैदा करती है। "बलिदान" वर्तमान काल में महात्मा गांधी का भी कहा जायगा जो अहिंसा के सच्चे पुजारी हैं। यों और भी इस धर्म क्षेत्र भारत में बहुत लाल निपजे हैं, जिन्होंने कुछ न कुछ अपना लक्ष्य रख कर माता की वेदी पर अपने बहुमूल्य प्राण न्यौछावर किये हैं।

सन् १८६३ में "बलिदान" देशी राज्यों के अन्तर्गत अलवर में लेखक के पूज्य भ्राता मेजर दीवान रामचन्द्र का हुआ जिन्होंने स्व. सर सवाई मङ्गलसिंह बहादुर के वियोग में अलवर राज्य को किसी आपत्ति से बचाने के अभिप्राय से अपने प्राणों की परवाह न की और खेलते-कूदते फाँसी के तख्ते पर लटक गये। कथा लम्बी चौड़ी है अतः संकेत मात्र इतना ही इस स्थान पर कहना पर्याप्त होगा। निकटभविष्य में प्रकाशित होने वाली लेखक की दूसरी पुस्तक "जीवन की भूल" में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है।

"जयपुर" राज्य में उल्लेखनीय "बलिदान" तथा स्वार्थ त्याग दीवान अमरचन्द और खत्री केशवदास नामक सज्जनों के हुए हैं जिनकी विख्यात कथाएँ जयपुर के सभी जन साधारण जानते हैं कि दीवान अमरचंन्द को फाँसी हुई और हरगोबिन्द नाटानी नामक मंत्री के धोखा देने के कारण केशवदास जैसे सच्चे हितैषी का स्व. महाराजा ईश्वरीसिंहजी के आग्रह पर विष का प्याला पी प्राण त्यागने पड़े।

अब यहाँ से मूर्ति पूजा की ओर चलना है जो यज्ञ काल के लुप्त होते ही आरम्भ हो गई थी और उच्चकोटि के हिन्दू उससे उस समय घृणा भी करते थे और अब भी वल्लभ कुल सम्प्रदाय के आचार्य मूर्तियों को भोग लगा कर प्रसाद पाना आचार के विरुद्ध मानते हैं। एक समय भारत में वह भी था कि जब भारतवर्ष के राजा प्रायः बौद्ध-धर्मी थे, किन्तु विशेषतः देवी के मन्दिरों में बलि का प्रचार हुआ। इनमें भी ब्रह्माणी और रुद्राणी दो प्रमुख शक्तियाँ हैं, जिनमें ब्रह्माणी देवी के कहीं बलिदान नहीं होता। रुद्राणी देवियों में "देशनोक" के स्थान की करणी जी, जो बीकानेर के पास हैं, प्रसिद्ध मूर्ति मानी गई हैं। ऐसे ही "आमेर" की शला देवी, जहाँ प्रति दिन बलिदान होता है। आमेर की देवी के लिये तो यह भी प्रसिद्ध है कि यहाँ आरम्भ में मनुष्य का बलिदान होता था, जब मनुष्य अप्राप्य होने लगे तो भैंसे का बलिदान होने लगा जिसके परिणाम स्वरूप देवी ने अपना मुँह मोड़ लिया परन्तु यहीं जयपुर राज्यान्तर्गत हमको एक विपरीत उदाहरण भी मिलता है। आज के १५० वर्ष पूर्व महाराज माधवसिंहजी प्रथम ने सागरजी नामक बारहठ को ग्राम सेवापुरा, तहसील आमेर में प्रदान किया था। इन सागरजी ने अपने इस ग्राम में करणीजी का मन्दिर स्थापित किया और अपने इष्टदेव से क्षमा माँग प्रार्थना की कि वह और उनके वंशज इसकी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस मन्दिर पर कभी बलिदान न होंगे जो आज तक निभ रहा है। माता उनकी इस अहिंसात्मक प्रतिज्ञा पर रूढ़ि के अनुसार अप्रसन्न होने की अपेक्षा इतनी प्रसन्न है कि इस वंश में लगभग १०० मनुष्य योग्य और कुशल विद्यमान हैं और कभी कोई गोद नहीं हुई। कहते हैं कि इन्हीं सागरजी के जामाता ने माँस खाने की एक समय बड़ा हठ किया, किन्तु बलि तो कहाँ, ग्राम की हद में भी बकरा नहीं मारा जा सकता जिसका बराबर

पालन हो रहा है, तो वे रूठ कर चले गये। करणी माता के सहस्रों मन्दिरों में केवल यही एक मन्दिर ऐसा है जहाँ बलिदान नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि हमारी देवी जिसको जगत जननी से सम्बोधित किया जाता है, वह एक राजा और निर्बल चींटो दोनों की माता है, वह अपनी एक सन्तान का वध दूसरी सन्तान के निमित्त कदापि सहन नहीं कर सकती। यदि वह कर सकती है तो वह माता कहलाने की पात्र ही नहीं कही जायगी। हम धर्म की आड़ में अपनी माता को यशस्वी बनावें चाहे निन्दा का पात्र, यह तो हमारा कर्तव्य है। वरन फिर यही चरितार्थ होता है कि:—

"अश्वं नैव गजं नैव व्याघ्रं नैवच नैवचः।
अजा पुत्रो बलिर्दद्यात् दैवो दुर्बल घातकः॥"

प्रायः देखा है कि दोनों नवरात्रों में बड़ी जीव हिंसा देवो प्रसन्नार्थ होती है और अहिंसात्मक जातियाँ भी इस कसाईखाने को देखने तथा उन्हीं दिनों में उस अवसर पर दर्शन करने जाना अपना धर्म तथा विनोद समझती हैं। वर्ष के ३६५ दिन राज-कर्मचारी रिश्वत लेते हैं और दुष्कर्म करते हैं और नवरात्र में एक बकरा माता की भेंट करके आगे के लिये एक प्रकार का लाइसन्स सा प्राप्त कर लेते हैं जैसे "गंगा" स्नान से पापों की मुक्ति का अन्ध विश्वास चल रहा है, फिर यहाँ से माता का प्रसाद एक मांस का लोथड़ा ले अपने और अपने परिवार को बड़ा भाग्यशाली समझते हैं। एक समय इसी प्रकार एक सरदार को देखा कि जो अपने ज्येष्ठ भ्राता को उसके जन्म सिद्ध अधिकारों से किसी प्रकार से वंचित करा एक छोटे से बकरे को "आमेर" की घाटी में घसीट ले जा रहे थे और उसका अपने कर कमलों से तथा पुजारियों द्वारा "बलिदान" करा बहुत प्रसन्न हुए होंगे !!!

"हज़ार ताअत हज़ार रोज़ा ओ पंज गाने नमाज़ ।
कुबूल नेस्त अगर खातिरे बियाज़ारी ।" अर्थात्

तूने हज़ार बन्दगी की, हज़ार रोज़े रखे और पाँचों वक्त की नमाज़ भी पढ़ी किन्तु वह कदापि कुबूल नहीं होगी यदि किसी प्राणी को तुमसे दुःख पहुँचा है। महात्मा "उमर खैयाम" भी इसी सम्बन्ध में कहते हैं, जिनकी रुबाई का यह अक्षरशः अनुवाद है:—

"बंधन रख न किसी का प्यारे, बन आसक्ति हीन मतिमान।
असंतोष को दूर बहा दे, त्याग झूँठ के सकल विधान॥
मन मानी कर, किन्तु सता मत किसी जीव को किसी प्रकार।
बस फिर तेरे लिये खुले हैं, निश्चय शांत स्वर्ग के द्वार॥"

महात्मा "कबीर" के महत्व के विषय में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका महत्व कम से कम दस लाख प्राणियों के हृदय पर अंकित है और हिन्दू-मुसलमान दोनों ही सम्प्रदाय उनके अनुयायी हैं। आप फरमाते हैं तथा आपका आदेश है:—

"दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथें बे हद।
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि २ साखी शब्द॥
दया कौन पर कीजिये, कापर निर्दय होय।
साँई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय॥
बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात है, ताको कौन हवाल॥
दिन को रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कहु क्यों खुशी खुदाय॥

खुस खाना है खीचड़ी, मांहि परा टुक नौन।
मांस पराया खाय खर, गला कटावै कौन॥"

लेखक ने यों तो कलकत्ते की यात्रा कई बार की है परन्तु प्रथम २५ वर्ष पूर्व जब जाना हुआ तो नये स्थान के कारण प्रसिद्ध काली देवी के मन्दिर बड़े उत्साह से चला गया, पश्चात् सन् १९३६ में "त्रिपुरा" राज्य से लौटती बार विजय दशमी पर फिर दर्शन किये, वहाँ के दृश्य को देख रोमाञ्च खड़े हो गये और श्रद्धा की अपेक्षा बड़ी घृणा हुई। देखा तो मन्दिर के आश्रितों ने "बलिदान" जीवन का एक व्यवसाय बना रखा है कि प्रति बलि एक रुपया छै आने भक्त को भेंट देनी होती है, जब उसकी बलि स्वीकार की जाती है। थालियों में मुण्डियों के ढेर थे, मृतक ल्हाशें एक बड़े ढेर के रूप में पड़ी हुई थीं और रक्त में लेखक के पाँव सन्द गये थे जिन्हें बहुत देर बाहर आकर धोना पड़ा। "त्रिपुरा" स्थान का दृश्य भी इसी तरह बड़ा बीभत्स था। यह राज्य "काँवरू देश" से मिला हुआ है और कमक्षा देवी वहाँ से केवल ३-४ घंटे का यात्रा रह जाती हैं। रास्ते में ९-१० घंटे का सफर "बोट" से करना होता है जो अच्छा मनोरंजक प्रतीत होता है। प्रातःकाल "अगरतला" नामक स्थान में जैसे ही प्रवेश किया तो ३-४ मील की दूरी तक सड़क के दोनों ओर मछली पकड़ने वालों का कोलाहल और मृतक मछलियां ढकोलों में लदी सड़क के दोनों ओर वास्तव में एक हृदय-वेधक घटना थी। चित्त की ग्लानि तो नगर में घुसते ही होगई फिर हिन्दुस्तानी मेहमान खाने में जाकर चाय आदि से निवृत होते ही प्रबन्धकर्ता ने भोजन करने के लिये पूछा कि क्या वस्तुएं रुचि कर होंगी तो पहिले पहल रसोईदार के दर्शनों की उत्कट इच्छा हुई। जैसे ही वह साक्षात् हुआ

जो ग्लानि उत्पन्न हुई उसका वर्णन दुष्तर है। फिर खाद्य पदार्थों की नामावली सुन और भी स्तम्भित हो गया। कोई वस्तु ऐसी नहीं सुनी जिसमें मछली का सम्पुट न हो। धन्यवाद पूर्वक उसको विदा कर मैनेजर महोदय से से चाय, दूध और प्राप्य फल के प्रदान करने की प्रार्थना कर एक सप्ताह के पश्चात् "त्रिपुरा" के आतिथ्य से छुटकारा पाया। यह सप्ताह नवरात्र का था और अष्टमी का उत्सव वहीं देख नवमी की रात्रि को वहाँ से पयान किया। श्राद्ध पक्ष में मांस का आहार वर्जित है, वहाँ श्राद्ध ही मांस से किया जाता है और दुर्गा पूजा तो बड़ी विचित्र और रोमाञ्चकारी है। साधारण से साधारण जन अपनी दुर्गा की मूर्ति पृथक् बनाते हैं जिसमें यथा-शक्ति जीव हिंसा आवश्यकीय और मुख्य धर्म समझा जाता है। महाराज के भैंसे-बकरों का बलिदान होता है तो एक दीन दरिद्री मुर्गा, कबूतर आदि और ये भी पर्याप्त न हों तो कच्चे पक्के अण्डे का ही बलिदान कर अपने को गौरवान्वित समझता है। साधारणतया ५-७ आदमी जो भी एक घर में होते हैं, बड़ी छोटी तथा छोटी-छोटी हजार आठसौ मछलियों को तेल में तल कर खा लेते हैं जो प्रति दिन के भोज में शामिल हैं और सहस्रों छोटी-छोटी मछलियों को मार मिट्टी के बर्तनों में जमीन के नीचे दबा देते हैं और समय-समय पर उस सड़े पदार्थ को खाते रहते हैं जो वहाँ विशेष रुचिकर माना जाता है। रास्ते में स्टेशनों पर भी ऐसे ही दृश्य दिखाई दिये। लेखक ने "जयपुर" लौटने पर इन सब बातों को थली सरदार, अपने मित्र से जिनसे वर्तमान त्रिपुरा नरेश की भूआ का पाणिग्रहण हुआ है। उन्होंने यथावत् सब घटनाओं को स्वीकार करते हुए यह और बतलाया कि जिस दिन वे व्याहने गये थे तो तोरण के समय एकत्रित मण्डली के

समक्ष एक बकरे का बलिदान कर उनके मस्तक पर उसके रक्त का टीका लगाया गया था, जिससे स्वयम् उनके ही आश्चर्य की सीमा न थी।

वर्तमान त्रिपुरा-नरेश एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं और सहृदयता के लक्षण उनके ललाट पर चमकते हैं फिर विनय भी उनमें असाधारण दृष्टिगोचर हुई। पाश्चात्य देशों का भ्रमण भी किया है, क्या अच्छा हो जो वे कृपा कर इस ओर ध्यान दें कि "लोकानुवर्तं वर्तन्ते, यथा राजा तथा प्रजा"। निस्सन्देह इस प्रान्त में काली और कृष्ण का नाम ही जीव मात्र की जिह्वा पर सुना गया। परन्तु काली का आदेश तो यह कदापि नहीं है, जिसका प्रमाण श्री दुर्गा सप्तशती प्रत्यक्ष है और कृष्ण के सदोपदेश तो नितान्त भिन्न हैं, जिसका गीता जैसी धर्म पुस्तक द्वारा अमृत पान कराया है।

मन्दिरों का अस्तित्व आरम्भ में उद्दण्ड ब्राह्मण जाति को विवश करने के लिये तथा अन्य किसी भी प्रयोजन से निकला हो किन्तु वर्तमान में तो बहुत कुछ देव स्थान दुराचार के केन्द्र के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहे जायेंगे और जिन लोगों को रूढ़ियों के नाम पर अपार दान और पौष्टिक भोजन मिलते हों- उनसे इनके विपरीत आशा भी क्या की जा सकती है। परिश्रम वे जानते नहीं और परिश्रम करें भी क्यों, जब कि वे भोले भाले यात्रियों को धर्म के नाम पर फँसाना अपना धर्म मानते है। जिन मठों के मठाधीशों से जीवन और परलोक के मार्ग के आदर्श उपदेश मिलते थे वहाँ उन वचन सिद्ध महर्षियों के स्थान पर व्यभिचारी और कुमार्गी लोग सहस्रों और लक्षों की आय और सम्पदा भोगते हैं और धर्म के नाम पर कैसा घोर अधर्म कर रहे हैं।

नरेशों को और धनी लोगों को जो ऐसे देवालय चलाते हैं उन्हें इस ओर

विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और जिन पर इनका उतरदायित्व है उन कर्मचारियों को जो इस भ्रष्ट प्रणाली से अपना भरण पोषण करते हैं हटा कर मन्दिरों का सुधार करना चाहिए। लेखक स्वयम् भी जयपुर में एक प्रसिद्ध मन्दिर का, जिसकी प्रतिमा को वहाँ का साक्षात् राजा माना जाता है और शासक को दीवान, मैनेजर रहा है। मन्दिर तो वैष्णव है किन्तु सेवा पूजा बङ्गाली ब्राह्मणों के हाथ में होने से पुजारी विशेषतः मांसाहारी हैं, जो खुल्लम खुल्ला तो खाने का साहस नहीं कर सकते परन्तु मौक़ा पाकर चूकते भी नहीं हैं। स्वयम् गोस्वामीजी महाराज, इन्हीं कारणों से जब उनके कुकर्मों की सूचना स्वर्गीय महाराज को मिली थी, भयभीत हो यहाँ से वृन्दावन चले गये और मन्दिर का प्रबन्ध उसी समय से अब तक राज्य द्वारा होता है। जब वैष्णव मन्दिरों की यह दशा हो तो शाक्त मन्दिरों की दशा का अनुमान तो कठिन है। भगवान जाने इन दुष्कर्मों और हिन्दू जाति के कलंकों का कब अन्त होगा।

"बलिदान" पर एक मार्मिक घटना लेखक के बाल्यकाल में ही घटी थी कि जिससे सहृदयता का परिचय मिलता है और "शत्रोरपि गुणा वाच्या, दोषा वाच्या गुरोरपि" के अनुसार कहा जायगा कि गुण और दोष जीव मात्र में हैं, कहीं-कहीं सद्गुण सम्पन्न लोगों में एक अवगुण ऐसा देखा है जिससे उनके जीवन में मुख की कालिमा धोये न धुली और सर्वस्व व्यक्तित्व नष्ट हो गया है और कहीं इसके विपरीत अवगुणों के भण्डारों में ऐसे भी गुण मिले हैं कि दीपक लेकर ढूंढने पर भी उनके सदृश प्राणी अप्राप्य हैं। बीसवीं शताब्दी का प्रभात था जब स्वर्गीय अलवर-नरेश विख्यात प्रभु को अपने राज-काज सञ्चालन के साधारण अधिकार मिल चुके थे और ठीक दुर्गा

पूजा की अष्टमी का अवसर था कि इक्यावन बकरे और एक भैंसा बलि के लिए राज्य-भवन में राज के नियमानुसार उस महान् आत्मा के समक्ष उपस्थित थे। बलिदान आरम्भ होता है, सात आठ बकरे कटने के पश्चात् एक बकरे की नसों को खटीक ने शासक समुदाय के इशारे पर सम्बन्धियों से हास्य के भाव में दबाया, बकरा कटा नहीं—"भगा" हो गई। जन समूह हँस पड़ा और क्या देखा जाता है कि उस नरेश के पवित्र आत्मा पर एक बिजली सी चमक गई। आप सहसा उठ खड़े हुए और शेष बलिदान ही नहीं, अपितु बलिदान मात्र का सदैव के लिए बलिदान कर दिया। जरूरी आज्ञा घुड़ सवारों द्वारा राज्य भर में उसी समय पहुँचा दी गई कि भविष्य में राज्य की सीमा के किसी स्थान पर बलिदान नहीं किये जायेंगे, जिसका आज तक पालन हो रहा है।

आपने ही अपने निवास स्थान विजय मन्दिर में राम का एक मन्दिर बनवाया जिसमें ३५ हजार की लागत पर वह मूर्ति बनवा उस स्थान पर स्थापित कराई। यह मन्दिर भोग आदि के आडम्बरों से मुक्त रखा गया, जिससे कई एक सामाजिक त्रुटियों के कारण व्यवस्था बिगड़ जाती है। राम की जैसी मनोहर और अद्भुत मूर्ति है, वैसी शायद ही भारत में किसी अन्य स्थान पर किसी ने देखी हो, फिर सेवा पूजा का ढंग विलक्षण, आरती और गायन यहाँ के अत्यन्त आकर्षक और सर्वोपरि यही एक मन्दिर राजस्थान में ही नहीं, सम्भव है, भारत भर में सर्व प्रथम ऐसा स्थापित हुआ जिसका द्वार, महात्मा गाँधी की प्रेरणा के बिना ही ऐसी योजना उपस्थित होने से कहीं पूर्व, अछूतों के लिए भी खोल दिया गया था। स्वर्गीय नरेश का अपने स्थान पर एक नीचे की सीढ़ी पर बैठना और प्राणी मात्र के लिए ऊपर नीचे आसपास कहीं भी अपना

आसन ग्रहण करने में किसी प्रकार की कोई अड़चन नहीं होती थी अर्थात् उस चार दीवारी में जाति पाँति का भेदभाव नहीं रखा गया था। हाँ, एक मुख्य आज्ञा अवश्य थी कि यात्री तथा वहाँ प्रतिदिन दर्शनकर्ता केवल राम को ही शीश नवावें, नरेश को नमन करना धर्म संगत नहीं था। वचन तो यह है कि:—

"याद आती है हमें तेरी वफ़ा तेरे बाद।"

उस मन्दिर की रचना और उस मूर्ति की मस्तक से चरणों तक की सुन्दरता वास्तव में व्यवस्थापक के उच्च मस्तिष्क और विचारों की द्योतक है।

क्षत्रिय जाति में प्रायः देखा गया है कि बच्चों में हिंसात्मक वृत्ति जागृत रखने के लिए पहिले केले पर अभ्यास कराया जाता है और फिर बकरों पर हाथ साफ होता है, किन्तु अब तो वह पौरुष ही लुप्त हो गया और दिन प्रति दिन देश सभ्य होता जा रहा है अतः इस प्रथा की समाप्ति कर दी जावे तो अच्छा है और क्षत्रिय जाति की कीर्ति अपार है। देशी राज्य इस अवसर के उदाहरण से शिक्षा ग्रहण कर यशस्वी बनें इसी में मंगल है।

दशहरे के अवसर पर रावण के वध की प्रथा में क्षत्रिय-मात्र अपना धर्म समझते हैं कि रावण जैसे महर्षि की प्रतिमा बना कर उसका वध करते हैं और पशुपति जगत-जननी जगत्-धात्री माता के नाम पर, किन्तु वाल्मीकि रामायण स्पष्ट बताती है कि राम के भी रावण के परास्त करने में छक्के छूट गये थे और यदि घर की फूट से (जो भारत का एक प्रसिद्ध फल है और ऐसे दुर्जनों का समय २ पर किसी स्थान पर अभाव नहीं रहा है) विभीषण भेदी न आ मिलता तो वास्तव में राम को "लङ्का" से विमुख लौटना पड़ता। इस विषय में विभीषण के चरित्र का वर्णन जुलाई सन् १९१४ के "सरस्वती अङ्क" में "लंका का जयचन्द" शीर्षक एक कविता द्वारा भली

प्रकार किया है, जो पढ़ने और मनन योग्य है और ऐसी निकृष्ट आत्मायें जो अपने स्वार्थ के साधन में तथा बताशे के लिए मंदिर के गिराने में संकोच नहीं करतीं, घोर निन्दित हैं।

कोई देवी किसी पैशाचिक वृति से प्रसन्न हो यह तो बुद्धि मानने को तय्यार नहीं है। यह तो एक प्रकार की रूढ़ि है तथा उसकी आड़ में जिह्वा का स्वाद चल रहा है। स्वर्गीय पं० देवऋषि नामक लेखक के श्वसुर-एक उच्च कोटि के पण्डित और चमत्कारी अनुष्ठानी ब्राह्मण थे। दुर्गा पाठ के संबन्ध में बड़े दक्ष थे, किन्तु हिंसात्मक पशु-बलि के कट्टर विरोधी। वे सदैव यही कहा करते थे कि खाद्य पदार्थ ही जिससे अपनी आत्मा संतुष्ट होती है श्री जगदम्ब को भी रोचक है। मांस भक्षण का वैद्यक ने भी निषेध किया है और इसका यही प्रमुख कारण भी है कि मनुष्य को प्रकृति ने वे दन्त और नख नहीं दिये जिससे वह इसका अधिकारी माना जा सके। राजस्थान जिसमें भी अहिंसात्मक जातियाँ मुसङ्गत में पड़ जाने से बहुधा मांसाहारी मिलती हैं, अन्य प्रांतों में तो यह जीवन का आधार ही समझ लिया गया है। शीत देशों के प्रति कुछ कहना वृथा सा है जहाँ जल वायु के बहाने इसको आवश्यकीय मानते हैं। परन्तु मांस भक्षण सात्विक वृति का तो घोर शत्रु है और बुद्धि का नाशक है। इसके विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि शासकों में बुद्धि का अभाव कैसे? उसका उत्तर यही होगा कि लेखक का प्रयोजन शुद्ध बुद्धि से है :—

"यातयामं गत रसं पूति पर्युषितंच यत्।
उच्छिष्ट मपि चामेध्यं भोजनं तामस प्रियम्॥ (श्री० भ० गी० अ० १७ श्लोक १०

मूढ़ ग्राहेणात्मनो यत्पीड़या क्रियते तपः ।

परस्योत्सादनार्थं वा तत्ताम समुदाहृतम् ॥" (श्री० भ० गी० अ० १७ श्लोक १६)

पाश्चात्य देशों में महात्मा टाल्सटॉय भी तो हुए हैं, जो अहिंसा में महात्मा गांधी के गुरु माने जाते हैं और वर्तमान में संसार प्रसिद्ध योद्धा हिटलर-मुसोलिनी आदि कई एक आत्माएं शाकाहारी कही जाती हैं । देखा गया है कि शनै २ उच्च विचारों के लोग मांस भोजन से घृणा करते जाते हैं क्यों कि यह तामसी होने के अतिरिक्त अन्त में मेदे को खराब कर पाचन शक्ति नष्ट कर देता है और फिर चिकित्सकों को यही उपदेश देते सुना है कि प्राण रखना चाहते हो तो साधारण हल्का भोजन ग्रहण करो । कुछ भी सही हमारे देवी देवताओं को लाञ्छन लगा कर बलिदान की प्रथा को प्रचलित रखना तो वह पाप है जो धोये न धुल सकेगा, क्योंकि ऐसा निकृष्ट आत्मा ही कर सकती है, उत्तम प्राणियों के लिए न्याय संगत नहीं कहा जायगा । जिह्वा के स्वाद के लिए पश्चिमी देशों की भांति अपनी वासना की तृप्ति के लिए न रहा जाय तो अन्य देश भी इसी उद्देश का आश्रय ले सकते हैं, यों धर्म की दृष्टि से तो हिंसात्मक वृति पाप है और पाप ही रहेगी । महात्मा "व्यास" का कथन है :—

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम् ।
परोपकार पुण्याय, पापाय पर पीड़नम् ॥ तथा,

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥

साधारणतया भी जैसा किसी कवि ने कहा है :—

"भक्षक और भक्षित विषैं, दीरघ फ़रक दिखात।
लाभ क्षणिक पहिलो लहै, जिय से दूजो जात॥"

स्मरण रहे कि राजा दशरथ ने अज्ञात दशा में श्रवणकुमार का वध कर डाला था और एक चक्रवति राजा होने के कारण उन्होंने दान, पुण्य, स्नान, तीर्थ आदि जीवन भर क्या नहीं किये होंगे परन्तु वही पुत्र के वियोग में जैसे श्रवण के पूज्य माता-पिता ने अपने प्राण त्यागे थे, देह छोड़नी पड़ी। इसी से तो कहा है कि—

"अवश्यमेव भोक्तव्यं फलम् कर्म शुभाशुभम।"

जब तक किसी का अन्त न देखो उसे पूर्ण भाग्यशाली मत कहो और कर्म का चक्र मालूम नहीं किस समय पल्टा खा जावे जैसे एक स्त्री ने अपने पति को कहा है :—

पूर्व पुण्यं उदय जब लो, तब लों न तजे लक्ष्मी गलबाहीं।
यह मत जाण निःशंक रहो, पिया पाप करो पल्टै छिन माहीं॥
जो मन में निश्चय नहीं आवे, तो सुणाये दृष्टांत के ताहीं।
तेल तुरि जो वयारि चले, तब दीप शिखा ह्वै जातकि नाहीं॥"

इसी तरह कहते हैं कि एक समय एक राजा आखेट को गये, शिकार न मिलने पर पड़ोस की राजधानी में जा निकले। ग्राम के चारों ओर नदी बहती थी, स्थान रमणीक था, एक दह पर महात्मा भगवान् का भजन करते थे और बस्ती के सत्सङ्गी लोग उनके दर्शनों को आते रहते थे। राजा ने दह में मछली मारना आरम्भ किया। ऋषि को ज्ञात होने पर वह कुटी के बाहर निकले और राजा को सम्बोधन कर कहने लगे कि हे राजन! तुम्हारे मस्ति-

ष्क पर प्रभुत्व के चिन्ह अवश्य हैं, परन्तु अकारण यह जीव हिंसा तुम क्यों कर रहे हो ? राजा ने उत्तर दिया कि हम पृथ्वीपति हैं हमारा तो यह प्रायः धर्म ही है और प्रत्येक वसुन्धरा के स्वामी प्राचीन काल से ऐसा करते आये हैं। महात्मा क्रोधित हुए और कहा कि यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुत्व और अविवेकता इन चारों में से एक भी वस्तु कुमार्ग में ले जाकर नाश कर देती है, तुम तो इनके साथ अज्ञान में भी जकड़े हुए हो, तुम्हारा निस्तार कैसे होगा ? दीन निर्बल ऐसे छोटे प्राणियों पर तुम को अपना पौरुष और बल का प्रयोग करते हुए तनिक भी लज्जा नहीं आई, सुनो अच्छे मनुष्य क्या कहते हैं :—

"किसी बेकस को ऐ बेदाद गर मारा तो क्या मारा।
जो आप ही मर रहा हो, उसको गर मारा तो क्या मारा॥
बड़े मूज़ी को मारा, नफ्स अ-मारा को गर मारा।
निहंगो अज़दहाओ, शेरे नर मारा तो क्या मारा॥
न मारा आपको जा, ख़ाक हो अक्सीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अक्सीर, गर मारा तो क्या मारा॥
हँसी के साथ यां रोना है, मिस्ले .कुल.कुले मीना।
किसी ने कहकहा ऐ बेख़बर, मारा तो क्या मारा॥
जिगर ज़ख्मी है, और दिल लौटता है।
इधर मारा तो क्या मारा, उधर मारा तो क्या मारा॥
दिले संगीन ".ख़ुसरो" पर भी, ज़र्बे कोहकन पहुँची
अगर तेशा सरे कोहसार पर, मारा तो क्या मारा॥
गया शैतान मारा, एक सिजदे के न करने में।
अगर लाखों बरस सिजदे में, सर मारा तो क्या मारा॥

दिले पहरवाह में था मारना, या चश्मे बदर्बी में।
फ़लक पर "ज़ौक़" तीर, आह गर मारा तो क्या मारा॥

'राजन्! तुम्हें शिकार का अवश्य अधिकार है, किन्तु रक्षार्थ और मर्यादार्थ, विनोदार्थ कदापि नहीं, उन जीवों का शिकार करो जो औरों के जीवन के कांटे हैं तथा उन प्राणियों का वध, तुम्हारा धर्म है, जो अपने कलुषित हृदयों को तृप्त करने में दूसरों को अहित चिन्तक हैं और हानि पहुँचाते हैं। संसार में कर्म प्रधान है तुम्हें ज्ञात नहीं है पूर्व जन्म में तुम क्या थे और अब भविष्य में क्या बनोगे, तुमने बड़ी तपस्या की थी और कर्म संस्कार से तुम्हें यह राज्य। और उन कुल मिला है, लाखों के पालक पोषक बने हो, परन्तु यहां चूकोगे तो रसातल में जाओगे और फिर राम जाने कितनी योनियाँ और क्या २ भोग भोगने पड़ेंगे, जहां सुकर्म करने का सुअवसर प्राप्त नहीं होगा। चलो मेरे साथ आओ मैं तुम्हें बताता हूँ कि शिकार कहाँ वर्जित है और कहां उसकी शास्त्रकारों ने आज्ञा दी है। महात्मा नरेश को साथ ले उसी बस्ती में चल पड़े और कहा कि पास ही की राजधानी में से कल यहाँ कुछ डाकू आये थे और ग्राम को नष्ट-भ्रष्ट कर गये। देखो! स्त्रियों के कारुणिक रुदन की आवाज आ रही है और कहीं २ तो गर्भपात से उनकी लाशें पड़ी हैं और शिशु बिलख रहे हैं। ग्राम में सन्नाटा छाया हुआ है। ऐसे दुष्टों का शिकार करो जिनके कारण यह आपत्ति आई है, जिससे तुम्हारे उत्तम रक्त का परिचय मिले। साथ के मनुष्यों ने कुछ कानाफूंसी की जिससे उनको एक प्रकार का संकेत सा मिला और वे चकित हो मुनि को अपना परिचय देकर कहने लगे कि मैं ही उस राज्य का स्वामी हूँ जहाँ के मनुष्यों का यह दुष्कर्म है और यह भी कहा कि कुछ ही समय पहले यह ग्राम भी हमारी

ही सम्पत्ति थी। इस पर तो ऋषि के क्रोध की सीमा न रही और कहा कि जब तुम अधिक वैभवशाली हो तो क्या तुम्हारे यहाँ के पदाधिकारी अपनी रोजी हलाल करके नहीं खाते हैं जो तुम्हारे आश्रित बन्दगाने .खुदा को इस तरह सताते हैं और तुम सहन करते हो तथा तुम शक्तिहीन हो जो उन्हें उचित दण्ड नहीं दे सकते। चलो तुम्हारी बस्ती में चलें और वहाँ तुम्हारा प्रबन्ध कैसा है, यह देखें—

रात्रि का समय था सूर्य अस्ताचल में जा चुके थे, नगरकोट में घुसते ही साधु ने कहा कि मैंने देवालय के दर्शन नहीं किये हैं। राजा ने कहा कि मेरे नगर में विशाल सम्पति के मन्दिर हैं और ३-४ प्रमुख में से एक समीप ही है, आप दर्शन करलें। दैवगति से क्या देखते हैं कि मन्दिर में मठाधीश के भ्राता ने पड़ोस की किसी ब्राह्मण अबला से बलात्कार किया था, जिस घटना को दो चार दिन ही हुए थे। जन-समूह एकत्रित हो आपस में गुरखुरा रहे थे कि द्रव्य तो काफ़ी खर्च हुआ जिसमें से कुछ उस स्त्री के वारिसों को देकर ठण्डा किया गया और ❀ शेष खरच खाते में, जिससे मामला मलियामेट होने की आशा बन गई। महात्मा और राजा दोनों भेष बदले हुए थे और ये सब बातें सुनीं, जिस पर साधु ने कहा—राजन्! वह तुम्हारे भाई के प्रति कर्तव्य का पालन था तो यह तुम्हारे घर का उदाहरण है!!

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवशि नरक अधिकारी॥"

❀ नोट—बड़े घरों में रिश्वत को खरच खाते की मद में दिखाया जाता है और कहीं २ तो भक्तजन घूस की बड़ी फ़र्मों के संचालक खाते श्री "सीताराम जानकीदास" के नाम पर ही रखते हैं।

हमें तो यह विदित हुआ कि तुम्हें अपने घर और बाहर का कुछ पता नहीं और सच भी तो है :—

"दरिया को अपनी मौज की तुगयानियों से काम।
कश्ती किसी की पार हो या दरमियां रहे॥"

तुमको मैं बुरी आत्मा तो नहीं कहूँगा कि तुम में विनय है, तुम्हारे नेत्रों में लज्जा है, किन्तु यह सब कुछ तुम्हारी शिक्षा का दोष प्रतीत होता है, जैसा कि महा कवि अकबर ने भी कहा है :—

"अतफ़ाल में बू क्या हो, माँ बाप के अतवार की।
दूध तो डब्बे का है, तालीम है सरकार की॥"

हाँ! एक समय भारत में वह था जब राजाओं को ऋषि मुनियों द्वारा कोई दूसरी शिक्षा मिलती थी, राजनीति सिखाई जाती थी वह आज की शिक्षा से भिन्न थी? अब तो समय ऐसा विपरीत आया है कि राजा अपना जीवन समाप्त करने तक उस शिक्षा की झलक भी देखने नहीं पाते और नहीं जानते कि राजनीति क्या वस्तु है। राजनीति का प्रथम मंत्र यही है जो महात्मा-चाणक्य ने कहा है :—

"प्रथम नृपति को धरम यह, न्याव करै निज हाथ।
सौंपै नाही और को, सो साँचो नर नाथ॥
औरन के सौंपे मँहि, अवगुण उपजें दोय।
आदि ईर्षा लोभतें, सत्य न्याव नहीं होय॥

वीर श्रेष्ठ! विद्याध्ययन का बहुमूल्य समय तो यों व्यतीत हो जाता है

फिर स्वार्थी लोगों के चक्कर से तुम्हें मुक्ति कहाँ ? सूर्यवंश में इक्ष्वाकु कुल के तुम वंशज हो, मर्यादा पुरुषोतम राम ने भरत को खड़ाऊ दे बिदा करते समय आदेश दिया था कि भरत ! तुम जैसे बुद्धिमान विचक्षण मेरे अंग को तथा इस आपत्ति काल में मेरे प्रतिनिधि को सूक्ष्म से सूक्ष्म शब्दों में कह कर सर्वस्व राजनीति का ज्ञान कराता हूँ, इसे मत भूलना और इसी लक्ष्य को लेकर राज्य कार्य संचालन करना, वरन् प्रजा दुखी होगी और :—

"मुनि तापस जिनते दुख लहहिं, ते नरेश बिन पावक दहहिं।"

वे दो शब्द जो तुम से अन्त में कहना चाहता हूँ, जिनके आधार पर मेरी अनुपस्थिति में तुम यशस्वी बन सकते हो, सुनो ये हैं :—

"मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक।
पाले पोपे सकल अंग, "तुलसी" सहित विवेक ॥"

तुम्हारी बस्ती में ब्राह्मण से लेकर श्वपच आदि सभी जातियाँ रहती हैं, जो तुम्हारी पुत्रवत् हैं । सूर्य के समान यदि तुमको सूर्यवंशी होने का गर्व है तो सब पर नजर रखना, सब की गुण ग्राहकता करना राजा और वैश्या दोनों का एक धर्म हैं । जैसे सूर्य कुन्दन और भिष्टा दोनों पर राग द्वेष से मुक्त यकसां चमकता है, इसी तरह राजा वही कुशल है जो प्रत्येक जाति में योग्य व्यक्तियों का क़दर दान हो । जैसे वेश्या को महफिल में सदर महफिल और ग़रीब उपस्थित वृन्द का सम्मान उसी एक दृष्टि से करना पड़ता है । इतना कह मुनि नरेश को मंगल कामना का आशीर्वाद दे विदा हुए ।

बलिदान तथा पशु बध आदि के विषय में इतना कह लेखक अब पाठकों

[ा ध्यान एक अत्यन्त भयंकर और महत्वशील विषय पर आकर्षित करता है 'बलिदान'' हिन्दुओं में तो दीन बकरे पर आ ठहरा हैं परन्तु विधर्मियों ने तो गऊ वध के कारण भारत को चौपट कर दिया। गौ माता के महत्व पर मैं अल्प बुद्धि क्या कहूँ और क्या न कहूँ हिन्दू-धर्म के शास्त्र और पुराण इसकी महिमा वर्णन करते २ असमर्थ रहे। बड़े २ ऋषि मुनियों ने इस प्रकरण में क्या नहीं कहा है। गऊ से जीव मात्र को कितना लाभ है, निःस्वार्थ दया यदि संसार से उठ गई तो स्वार्थवश दया से तो मुँह नहीं मोड़ना चाहिये।

इक्ष्वाकु कुल भूषण राजा दिलीप का आत्म बलिदान गऊ के प्रति आदरणीय है और प्रलय काल तक जीव मात्र की जिह्वा पर प्रशंसनीय रहेगा परन्तु सहृदय यवन सम्राट् अकबर की भी प्रशंसा किये विना नहीं रहेंगे कि यद्यपि वे कोई विशेष लिखे पढ़े व्यक्ति न थे किन्तु लोकप्रिय शासक अवश्य हुए हैं जिनके विचार में साम्प्रदायिक खेंचा तानी नहीं थी अपितु मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं के साथ भी सद्व्यवहार करने में कभी संकोच नहीं करते थे। यदि थोड़े दिन वे और जीवित रहते तो हिन्दू और मुसलमानों का भेद भाव ही उठ गया होता कि देशी राज्यों को तो उन्होंने रक्त सम्बन्ध में जकड़ लिया था और यह वीर क्षत्रिय जाति उनके पसीने पर रक्त बहा रही थी। कहते हैं कि एक समय गौ वध का प्रश्न निम्न लिखित सवैये से उनके सामने रखा गया तो हिन्दू-जाति को ऋणि रखने को अभिप्राय से इस कुरीति का, भारत भर में बन्द करने की आज्ञा देकर, वध कर डाला। सवैया इस प्रकार है:—

"अरिहु दन्त तृन धरें, ताहि मारत न सबल कोइ।
हम सन्तत तृन चरहिं, वचन उच्चरहिं दीन होइ॥

अमृत पय नित श्रवहिं, बच्छ महियम्मन जावहिं ।
हिन्दुहि मधुर न देहिं, कटुक तुरकहिं न पियावहिं ॥
कह कवि- "नरहरि" अकबर सुनो, बिनवत गऊ जोरे करन ।
अपराध कौन मोहिं मारयतु, मुयहु चाम सेवइ चरन ॥"

सम्राट् अकबर की मृत्यु के पश्चात् इस आज्ञा का कहाँ तक पालन हुआ इसके कहने की आवश्यकता नहीं, उनके उत्तराधिकारी मुग़ल सम्राट् जहाँगीर तो ऐसे योग्य हुए कि नवाब "ख़ानख़ाना" जैसे महापुरुष को कारागार में बन्द कर दिये। और फिर उत्तरोत्तर औरंगजेब ने अपने भाइयों को मरवा डाला और पूज्य पिता शाहजहाँ को चिरकाल तक बन्दी रखा। दुष्कर्मों का परिणाम तो फिर जो हुआ करता है, होना ही चाहिये था कि वही मुग़ल ख़ानदान जो बहुत समय तक भारत का शासक रहा, आज उसकी सन्तान टुकड़ों की भिखारी है। बक़ौल किसी कवि के:—

"अल्लाह की राह अब तक है खुली, आसारो निशाँ सब क़ायम हैं।
अल्लाह के बन्दों ने लेकिन, इस राह पर चलना छोड़ दिया ॥
जब सर में हवाए ताअत थी, सर-सब्ज़ शजर उम्मीद का था।
जब सरसरे इस्याँ चलने लगी, इस पेड़ ने फलना छोड़ दिया ॥"

श्री भीष्म पितामह महाभारत के प्रधान महारथी-शर-शैया पर लेटे अन्तिम श्वास ले रहे हैं और पाण्डव आदि सभी उनके पास बैठे हुए उनसे राजनीति जानने के उत्सुक हैं। वह त्यागमूर्ति स्वर्णाक्षरों में यह आदेश दे रहे हैं :—

"धन्यं यशस्य मायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।

मांसस्या भक्षणं प्राहुर्नियताः परमर्षयः ॥" (महाभारत शांतिपर्व)

"बलिदान" के विषय में "जयपुर" निवासी रामचन्द्र वीर ने अपने सत्याग्रह द्वारा बहुत प्रयत्न किया और कलकत्ता में काली के मन्दिर में लगातार उपवास कर आमरण अनशन पर भी उतारू हो गये, परन्तु भारत के स्तम्भ महात्मा गांधी और महामना मालवीय ने आग्रह पूर्वक उनकी भीष्म प्रतिज्ञा तुड़वा दी फिर इस सम्बन्ध में ठोस कर्म क्या हुआ सो नहीं सुना गया। मथुरा में गऊ वध रोकने के लिए एक प्रबल संगठन हाल ही में हुआ था और ऐसी योजनाएं प्रायः यहाँ वहाँ उठती रही हैं और जब तक यह जीर्ण हिन्दू-धर्म चल रहा है, उठती ही रहेंगी किन्तु जब तक वकील "जवाहर" भारत के भूषण सत्ता हाथ में न हो क्या हो सकता है। महात्मा गांधी स्वराज्य की धुनि में कारावास सेवन कर रहे हैं तो महामना मालवीय विश्व विद्यालय का महान् केन्द्र रच कर अब ऐसी योजनाओं के लिए निर्बल और शक्तिहीन हो चुके। भगवान जाने यह निर्दय बरबरता कब संसार से दूर होगी। महात्मा गांधी ने अनाशक्ति योग और गीता बोध की प्रस्तावना में कहा है कि गीता युग के पहिले कदाचित यज्ञ में पशु हिंसा चलती हो परन्तु गीता के यज्ञ में उसकी कहीं गन्ध तक नहीं है। उसमें तो जप-यज्ञ यज्ञों का राजा है। तीसरी अध्याय में स्पष्ट बतलाया गया है कि यज्ञ का अर्थ है मुख्यतः परोपकारार्थ शरीर का उपयोग। तीसरी और चौथी अध्याय को मिला कर और व्याख्यायें निकाली जा सकती हैं पर पशु हिंसा नहीं निकाली जा सकती यही बात गीता के सन्यास के अर्थ के सम्बन्ध मे भी है। दुर्गा सप्तशती के कवच में प्रत्येक प्राणी माता भगवती से यही प्रार्थना करता है :—

"यश कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चण्डिके ।
गोत्रमिन्द्राणी मेरक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ॥"

जिससे स्पष्ट अर्थ निकलता है कि, हे मातेश्वरी, मेरे पशुओं की रक्षा कर। पाठ में रक्षा की प्रार्थना और फिर उसी जगदम्ब के सामने पशु की बलि तथा हत्या !!! कलकत्ता और बम्बई आदि प्रमुख शहरों के निवासी धनी सेठ साहूकार इससे भली भांति परिचित हैं कि दूध के व्यवसायी हिन्दू मुसलमान दोनों ही—नहीं, जिनमें मुख्य हिन्दू हैं, "हरियाना" "नागौर" आदि प्रान्तों की ओर से बैल और पुष्ट गायें वहाँ ले जाते हैं, आठ महीने उनके लाभ उठाते हैं और लाभ भी कैसा ? फिर उनको वापिस उनके पहुँचाने में असमर्थ बन जाते हैं और इसके अतिरिक्त अन्य उपाय चिते कि सहर्ष कसाई खाने के भेट कर दें और उसके मांस और चमड़े मत में अपना अन्तिम संतोष ग्रहण करते हैं। जिन हत्याओं की गणना लाखों की प्रति वर्ष होती है ।। हिन्दू धर्म ने स्थान २ पर यही कहा है कि ब्रह्म हत्या और गऊ हत्या इनसे बढ़ कर अन्य पाप नहीं है। जिस शासन में दोनों ही पाप जो एक दूसरे के आधार पर है प्रति दिन सहस्रों किये जावें वह विजय के भी स्वप्न देखें, आश्चर्य है। क्या अच्छा हो कि हिन्दू-समाज जहाँ बहुमूल्य देवालय धर्मशाला स्थापित करने में अपना धन व्यय करते हैं, इक दम दुग्ध सेवन को तिलांजलि दे घोर सत्याग्रह कर डालें और उस मार्ग की पूँजी इधर लुटा ऐसे व्यवसायिओं का नामो निशां मिटा इन कसाई खानों में ताला लगवादें। इससे हिन्दुत्व का परिचय मिलेगा और वह दुग्ध और घृत जो अप्राप्य हो चला उसकी नदियाँ फिर भारत में बह निकलेंगी। देखा जाय तो हिन्दू मात्र को इस एक लक्ष्य पर जम जाना चाहिये फिर सफलता

ईश्वर नहीं है। क्षत्री मात्र का भी इस ओर दृढ़ प्रतिज्ञा द्वारा अग्रसर होना आवश्यकीय है। देशी राज्यों की संख्या बहुत काफी है और वह जगह २ अपने राज्यों में "डेरियाँ" खोल इस प्रथा को कुचल सकते हैं कि उनके हाथ में थोड़ी बहुत सत्ता भी है; वरन् सन्तान निर्बल हो चुकी, बच्चों को दूध के लिए आज बिलखते देख रहे हैं। खराब दूध जो मिलता है उसके कारण क्षय रोग की दिन प्रति दिन तरक्की हो कर बड़े २ चिकित्सालय खुलते जा रहे हैं और इस रोग के निपुण डाक्टरों की भरती बढ़ती जा रही है। अन्य मतावलम्बियों की प्रकृति चाहे इस उत्तम कार्य में बाधित हो पर हित तो उनका भी इस योजना में अवश्य है कि इतिहास देखने से पता मिलता है कि "अमेरिका" "आस्ट्रेलिया" आदि स्थानों में गऊ का महत्व कहाँ तक बढ़ा हुआ है। हिन्दू जाति ही मूर्ख नहीं है जो गऊ की पूजा करती है अपितु वह देश भी उसी भांति गौ पूजक हैं और इस सम्बन्ध में "आरोग्य शास्त्र" नामक पुस्तक के रचयिता श्री चतुरसेन शास्त्री ने विस्तार पूर्वक विवरण दिया है जो प्राणी मात्र के पढ़ने योग्य है।

ब्राह्मण जाति जो भारत में कभी नेतृत्व करती थी सदा के लिए सो गई है। द्रोण जैसे ब्राह्मणों का स्वप्न मात्र रह गया है कि जिन्होंने अकृतज्ञ राजा द्रुपद से गऊ की भिक्षा मांगी और न देने पर महाभारत जैसा महान् युद्ध रच दिया। चाणक्य जैसे भी आज बदला लेने वाले ब्राह्मणों का अभाव हो चुका। महर्षि दयानन्द जैसे जबरदस्त नेता जिन्होंने हिन्दू जाति में प्राण डाल, काल के ग्रास हो चुके। लोकमान्य तिलक जैसे भी ब्राह्मण नहीं रहे जिनसे अन्त समय में कुछ प्रबल आशाएं हो सकती थीं। झोली वाले ब्राह्मण रह गये कि खुशामद से जो अपनी इच्छाएं पूर्ण करते हैं।

उनसे कहीं जागृति की आशा की जा सकती है जो क्षत्रिय जाति को घोर निद्रा से उठा सके। अब तो कलिकाल है व्यक्तित्व पर निर्भर रह गया, प्रा के उठे से पार पड़ेगी। अतः भ्रातृगण, उठो जागो और इस लक्ष्य देखो। भगवान् तुम्हारी विजय करेंगे, वरन रसातल को पहुँच चुके हो और :—

"प्रतिभारत भारत रहा, जब था इसका मान।
अब रति रत भारत हुआ, हुआ हीन हुस्तान॥